वैदिक शिक्षा प्रणाली (Vedic Education System)

प्रस्तावना (Introduction)

वैदिक काल: भारतीय वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद) संसार के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। सामान्यतः वेदों को धार्मिक ग्रंथों के रूप में देखा- समझा जाता है, वेदों की रचना कब और किन विद्वानों ने की इस विषय में विद्वान भी एक मत नहीं हैं। जर्मन विद्वान मैक्समूलर सबसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने भारत आकर इस में क्षेत्र में शोध कार्य शुरू किया। उनके अनुसार, वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद है और इसकी रचना 1200 ई०पू० में हुई थी। लोकमान्य तिलक ने ऋग्वेद में वर्णित नक्षत्र स्थिति के आधार पर इसका रचना काल 4000 ई०पू० से 2500 ई०पू० सिद्ध किया है। इतिहासकार हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को केवल 3500 वर्ष पुरानी मानते हैं। हमारे देश में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। वेदों की भाषा संस्कृत इतनी समृद्ध एवं परिमार्जित है और उनकी विषय सामग्री इतनी विविध, विस्तृत एवं उच्च कोटि की है कि उस समय इनके विकास में काफी समय अवश्य लगा होगा।

एफ० डब्लू० थॉमस के शब्दों में, *"ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो जितना भारत में या जिसने इतना स्थायी ओर शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो जितना भारत ने"* (*"There has been no country except India where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful influence."*-**F.W. Thomas**) । साथ ही यह बात भी सभी स्वीकार करते हैं कि भारत में 2500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक वेदों का वर्चस्व रहा। इतिहासकार इस काल को वैदिक काल कहते हैं। वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ।

शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)-

सामान्यतः बच्चों को परिवारों में विद्यारम्भ संस्कार और गुरुकुलों में उपनयन संस्कार के बाद विभिन्न विषयों में दिए जाने वाले ज्ञान एवं कला कौशल में प्रशिक्षण को शिक्षा कहा जाता था। यह शिक्षा का संकुचित अर्थ था, परन्तु जब शिष्य गुरुकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे तो समावर्तन समारोह होता था और इस समारोह में गुरू शिष्यों को उपदेश यह भी देते थे कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) मत करना। इसका अर्थ है कि उस काल में जीवन भर स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन किया जाता था। यह शिक्षा का व्यापक अर्थ था।

वैदिक काल में शिक्षा निम्न प्रकार थी-

1. प्रारम्भिक शिक्षा- वैदिक काल में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। लगभग 5 वर्ष की आयु पर किसी शुभ दिन बच्चे का विद्यारम्भ संस्कार किया जाता था। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा कराया जाता था। बच्चे को स्नान कराकर नए वस्त्र पहनाए जाते थे और कुल पुरोहित के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। कुल पुरोहित नया बस्त्र बिछाता था और उस पर चावल बिछाता था। इसके बाद वेद मन्त्रों द्वारा देवताओं की आराधना की जाती थी और बच्चे की उंगली पकड़कर उसके द्वारा बिछे हुए चावलों में वर्णमाला के अक्षर बनवाए जाते थे। कुल पुरोहित को भोजन कराकर दक्षिणा दी जाती थी। कुल पुरोहित बच्चे को आशीर्वाद देता था और इसके बाद बच्चे की शिक्षा नियमित रूप से प्रारम्भ होती थी।

2. उच्च शिक्षा- वैदिक काल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों में होती थीं। 8 से 12 वर्ष की आयु पर बच्चों का गुरुकुलों में प्रवेश होता था ब्राह्मण बच्चों का 8 वर्ष की आयु में (वसंत ऋतु में), क्षत्रिय बच्चों का 10 वर्ष की

आयु में (ग्रीष्म ऋतु में) और वैश्य बच्चों का 12 वर्ष की आयु में (पतझड़ ऋतु में) गुरुकुलों में प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार के बाद उनकी उच्च शिक्षा प्रारम्भ होती थी।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षण (Main Characteristics of Vedic Education System)

वैदिक काल में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ उसे वैदिक शिक्षा प्रणाली कहते है। पूरे वैदिक काल में शिक्षा का प्रशासन एवं संगठन तो सामान्यतः एक सा रहा परन्तु समय की परिस्थितियों और ज्ञान एवं कला कौशल के क्षेत्र में विकास के साथ-साथ उसकी पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों में विकास होता रहा। यहाँ वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षणों (Main Features) का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है-

शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त (Administration and Finance of Education)

वैदिक शिक्षा प्रणाली के प्रशासन एवं वित्त के सम्बन्ध में तीन तथ्य उल्लेखनीय हैं-

i. राज्य के नियन्त्रण से मुक्त- वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था। परिणामतः उस पर राज्य का कोई नियन्त्रण भी नहीं था। इस काल में शिक्षा पूर्णरूप से गुरूओं के व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी।

ii. निःशुल्क शिक्षा- वैदिक काल में शिक्षा पूर्णरूप से निःशुल्क रही। शिष्यों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था भी गुरू स्वयं करते थे लेकिन शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्य गुरूओं को अपनी सामर्थ्यानुसार गुरू दक्षिणा अवश्य देते थे।

iii. आय के स्रोत दान, भिक्षा और गुरू दक्षिणा- वैदिक काल में गुरूकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित अनुदान प्राप्त नहीं होता था। उस समय राजा, महाराजा और समाज के धनी वर्ग के लोग इन गुरूकुलों को स्वेच्छा से भूमि, पशु, अन्न, वस्त्र, पात्र और मुद्रा दान स्वरूप भेंट करते थे। गुरूकुलों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिष्य समाज से नित्य भिक्षा माँग कर लाते थे। इन गुरुकुलों की आय का तीसरा स्रोत था- गुरू दक्षिणा।

शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

डॉ0 अल्तेकर के शब्दों में, *"ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे। उस काल में शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में लिया जाता था।"* इससे स्पष्ट है कि उस काल में शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास था। समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्तव्य पालन और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास पर भी उस काल में विशेष बल दिया जाता था। मोक्ष की प्राप्ति तो उस काल में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाता था और इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा द्वारा उसका आध्यात्मिक विकास किया जाता था।

इन सब उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-

i. ज्ञान का विकास- यह वैदिक कालीन शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य था। तब ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता था। **(ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रम्)** और यह माना जाता था कि ये दो नेत्र तो हमें केवल दृश्य जगत का ज्ञान भर कराते हैं परन्तु यह तीसरा नेत्र हमें दृश्य और सूक्ष्म दोनों जगत का ज्ञान कराता है। यह हमें सत्य-असत्य का भेद स्पष्ट करता है, करणीय तथा अकरणीय कर्मों का भेद स्पष्ट करता है और भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त करने का मार्ग स्पष्ट करता है।

ii. स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन- ऋषि आश्रमों और गुरूकुलों में शिष्यों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्द्धन पर विशेष बल दिया जाता था और उन्हें उचित आहार-विहार और आचार-विचार की शिक्षा

दी जाती थी। शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए शिष्यों को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठना होता था, दातून एवं स्नान करना होता था, व्यायाम करना होता था, सादा भोजन करना होता था, नियमित दिनचर्या का पालन करना होता था ओर व्यसनों से दूर रहना होता था। शिष्यों के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए उन्हें उचित आचार-विचार की ओर उन्मुख किया जाता था।

iii. जीविकोपार्जन एवं कला-कौशल की शिक्षा- प्रारम्भिक वैदिक काल में शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार कृषि, पशुपालन एवं अन्य कला-कौशलों की शिक्षा दी जाती थी। उस समय हमारा देश धन-धान्य से सम्पन्न था, लोग बहुत अच्छा जीवन जीते थे। परन्तु उत्तर वैदिक काल में ब्राहमणों ने स्वार्थ के वशीभूत होकर कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था में बदल दिया जिसके परिणामस्वरूप लोगों को वर्णानुसार शिक्षा दी जाने लगी। वैदिक काल के इस अन्तिम चरण में शूद्रों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित करना धूर्तता व स्वार्थ भरा कदम था वे शिक्षा अपने-अपने परिवारों में प्राप्त करते थे।

iv. संस्कृति का संरक्षण एवं विकास- वैदिक काल में शिक्षा का एक उद्देश्य अपनी संस्कृति का संरक्षण और हस्तान्तरण था। उस काल मे गुरूकुलों की सम्पूर्ण कार्य पद्धति धर्मप्रधान थी। उस काल में शिष्यों को वेद मन्त्र रटाए जाते थे, संध्या वन्दन की विधियाँ सिखाई जाती थीं और आश्रमानुसार कार्य करने का उपदेश दिया जाता था। उस पूरे काल में शिक्षा का एक ऐसा क्रम चला कि उसके प्रभाव से अनेक लोग गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे और जंगलों में रहते हुए अध्ययन, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करते थे और नए-नए तथ्यों की खोज करते थे। इनमे से कुछ लोग संन्यास आश्रम में प्रवेश करते थे और ध्यान और समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त करते थे। इससे इस देश की संस्कृति का संरक्षण और विकास हुआ।

v. नैतिक एवं चारित्रिक विकास- वैदिक काल में चरित्र निर्माण से तात्पर्य मनुष्य को धर्मसम्मत आचरण में प्रशिक्षित करने से लिया जाता था उसके आहार-विहार और आचार विचार को धर्म के आधार पर उचित दिशा देने से लिया जाता था।

vi. आध्यात्मिक उन्नति- वैदिक काल में शिक्षा का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मनुष्य के वाह्य एवं आन्तरिक दोनों पक्षों को पवित्र बनाकर उन्हें चरम लक्ष्य **मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करना** था।

शिक्षा की पाठ्यचर्या (Curriculum of Education)-

वैदिक काल में शिक्षा दो स्तरों में विभाजित थी- प्रारम्भिक और उच्च।

1. प्रारम्भिक शिक्षा की पाठ्यचर्या- वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यचर्या में भाषा, व्याकरण, छन्दशास्त्र और गणना का सामान्य ज्ञान तथा सामाजिक व्यवहार एवं धार्मिक क्रियाओं के प्रशिक्षण को स्थान प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल में उसमें नीतिप्रधान कहानियों को और जोड़ दिया गया। जो लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु गुरूकुलों में प्रवेश दिलाना चाहते थे वे उन्हें संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण का अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान कराते थे।

2. उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या- इस काल में उच्च स्तर पर संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण तथा धर्म एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। प्रारम्भिक साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों, कर्मकाण्ड, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान, सैनिक शिक्षा, कृषि, पशुपालन, कला-कौशल, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र और प्राणिशास्त्र की शिक्षा ऐच्छिक थी। उत्तर वैदिक काल में उच्च शिक्षा की इस पाठ्यचर्या में अनेक अन्य विषय सम्मिलित किए गए जैसे- इतिहास, पुराण, नक्षत्र विद्या, न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र, देव विद्या, ब्रह्म विद्या और भूत विद्या इसे विशिष्ट शिक्षा की

संज्ञा दी जा सकती है। शिष्य इनमें से अपनी रूचि के अनुसार किसी भी विषय का अध्ययन करने के लिए स्वतन्त्र थे।

वैदिक कालीन शिक्षा की पाठ्यचर्या को उसकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया जाता है-

1. अपरा (भौतिक) पाठ्यचर्या- इसके अन्तर्गत भाषा, व्याकरण, अंकशास्त्र, कृषि, पशुपालन, कला (संगीत एवं नृत्य), कौशल (कताई, बुनाई, रंगाई, काष्ठ कार्य, धातु कार्य एवं शिल्प), अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, प्राणिशास्त्र, सर्प विद्या, तर्कशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान एवं सैनिक शिक्षा का अध्ययन और व्यायाम, गुरूकुल व्यवस्था एवं गुरू सेवा की क्रियाएं सम्मिलित थी।

2. परा (आध्यात्मिक) पाठ्यचर्या- इसके अन्तर्गत वैदिक साहित्य (वेद, वेदांग एवं उपनिषद्), धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र का अध्ययन और इन्द्रिय निग्रह, धर्मानुकूल आचरण, ईश्वर भक्ति, सन्ध्यावन्दन और यज्ञादि क्रियाओं का प्रशिक्षण सम्मिलित था।

शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods)

वैदिक काल में शिक्षण सामान्यतः मौखिक रूप से होता था और प्रायः प्रश्नोत्तर, शंका समाधान, व्याख्यान और वाद-विवाद द्वारा होता था। उस समय भाषा की शिक्षा के लिए अनुकरण विधि और कला-कौशल की शिक्षा के लिए प्रदर्शन एवं अभ्यास विधियों का प्रयोग किया जाता था। उपनिषदकारों ने शिक्षण की एक बहुत प्रभावी विधि का विकास किया था जिसे श्रवण, मनन और निदिध्यासन विधि कहते हैं। साफ जाहिर है कि उस समय उपरोक्त सब विधियों का प्रयोग कुछ अपने ढंग से होता था। अतः यहाँ इनके प्राचीन रूप को स्पष्ट करना आवश्यक है।

i. अनुकरण, आवृत्ति एवं कण्ठस्थ विधि- अनुकरण विधि सीखने की स्वाभाविक विधि है। वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर पर भाषा और व्यवहार की शिक्षा प्रायः इसी विधि से दी जाती थी। उच्च स्तर पर भी इसका प्रयोग होता था- गुरू शिष्यों के सम्मुख वेद मन्त्रों का उच्चारण करते थे, शिष्य उनका अनुकरण करते थे, उन्हें बार-बार उच्चारित करते थे और इस प्रकार उन्हें कण्ठस्थ करते थे।

ii. व्याख्या एवं दृष्टान्त विधि- वैदिक काल में शिष्यों को व्याकरण का कोई नियम अथवा वेदों का कोई मन्त्र कण्ठस्थ कराने के बाद गुरू उसकी व्याख्या करते थे, उसका अर्थ एवं भाव स्पष्ट करते थे और उसके अर्थ एवं भाव को स्पष्ट करने के लिए उपमा, रूपक और दृष्टान्तों का प्रयोग करते थे।

iii. प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधि- उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों की शैली के आधार पर प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधियों का विकास हुआ। प्रारम्भिक वैदिक काल में गुरू उपदेश देते थे, व्याख्यान देते थे और शिष्य शान्तिपूर्वक सुनते थे, उत्तर वैदिक काल में शिष्य अपनी शंका प्रस्तुत करते थे और गुरू उनका समाधान करते था। उच्च शिक्षा में उच्च स्तर के शिष्यों और गुरूओं के बीच वाद-विवाद भी होता था। अति गूढ़ विषयों पर चर्चा हेतु अधिकारी विद्वानों के सम्मेलन भी बुलाए जाते थे, उनके बीच शास्त्रार्थ होता था। शिष्य इस सबको सुनते थे और अपने तत्सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि करते थे।

vi. कथन, प्रदर्शन एवं अभ्यास विधि- वैदिक काल में कृषि, पशुपालन, कला-कौशल, सैन्य शिक्षा और आयुर्विज्ञान आदि क्रियाप्रधान विषयों की शिक्षा कथन, प्रदर्शन और अभ्यास विधि से दी जाती थी। गुरू सर्वप्रथम सिखाए जाने वाली क्रिया के सम्पादन की विधि बताते थे और फिर उसे स्वयं करके दिखाते थे तत्पश्चात शिष्य उनका अनुकरण कर यथा क्रिया का अभ्यास करते थे और धीरे-धीरे उसमें दक्षता प्राप्त करते थे।

v. श्रवण, मनन, निदिध्यासन विधि- यह विधि भी उपनिषदकारों की देन है। उस काल में गुरू जो भी व्याख्यान देते थे, वेद मन्त्रों आदि की जो भी व्याख्या करते थे, धर्म, दर्शन एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी देते थे, शिष्य उनको ध्यानपूर्वक सुनते थे, उसके बाद उस पर मनन करते थे, चिन्तन करते थे।

vi. तर्क विधि- उत्तर वैदिक काल में तर्कशास्त्र जैसे गूढ़ विषयों के शिक्षण हेतु तर्क विधि का विकास हुआ। उस समय इस विधि के पाँच पद थे- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, अनुपयोग और निगमन।

अनुशासन (Discipline)

प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता था। उस काल में शारीरिक संयम से तात्पर्य था- ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, श्रृंगार न करना, सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग न करना, नृत्य एवं संगीत में आनंद न लेना, मादक पदार्थों का सेवन न करना, जुआ न खेलना, गाय न मारना, झूठ न बोलना और चुगली न करना। मानसिक संयम से तात्पर्य था- इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन और काम-क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहना और आत्मिक संयम से तात्पर्य था- आत्मा के स्वरूप को पहचानना, सब में एकात्म भाव देखना और सबके कल्याण के लिए कार्य करना। इस काल में स्वानुशासन एवं प्रभावात्मक अनुशासन महत्वपूर्ण था। छात्र अपने गुरु के आचरण को आदर्श मानते हुए प्रभावात्मक अनुशासन का अनुकरण करते थे।

शिक्षक/गुरू (Teacher)

वैदिक काल में अति विद्वान, ब्रह्मज्ञानी, स्वाध्यायी, धर्मपरायण और सच्चरित्र व्यक्ति ही गुरू हो सकते थे। ये अतिज्ञानी के साथ-साथ अति संयमी भी होते थे। उस समय इन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। ये देव रूप में प्रतिष्ठित थे। इन्हें धियावसु (जिसकी बुद्धि ही धन है), सत्यजन्मा (सत्य को जानने वाला) और विश्ववेदा (सर्वज्ञ) आदि विशेषणों से सम्बोधित किया जाता था। ये अपने गुरूकुलों के पूर्ण स्वामी होते थे, पर पूर्ण स्वामित्व के साथ पूर्ण उत्तरदायित्व जुड़ा था। ये अपने गुरूकुलों की सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते थे। ये अपने शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करते थे, उनके स्वास्थ की देखभाल करते थे और उनके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न करते थे।

गुरू-शिष्य सम्बन्ध (Relation of Teacher and Students)

वैदिक काल में गुरू और शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। गुरू शिष्यों को पुत्रवत् मानते थे और शिष्य गुरूओं को पितातुल्य मानते थे। वैदिक काल में गुरुकुलों की व्यवस्था गुरू और शिष्य दोनों संयुक्त रूप से करते थे। वैदिक काल में गुरू शिष्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी होते थे। वे शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करते थे। उनके अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करते थे। शिष्यों के सर्वांगीण विकास हेतु सन्नद्ध रहते थे। वैदिक काल में शिष्य गुरूओं के प्रति पूर्णरूप से समर्पित होते थे।

परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ (Examination and Degree)

वैदिक काल में आज की तरह की परीक्षाएं नहीं होती थीं। सर्वप्रथम तो गुरू ही मौखिक रूप से प्रश्न पूछ कर यह निर्णय करते थे कि किसी शिष्य ने यथा ज्ञान प्राप्त कर लिया है अथवा नहीं। इसके बाद उन्हें विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था। ये विद्वान इन छात्रों से प्रश्न पूछते थे और सन्तुष्ट होने पर उन्हें सफल घोषित करते थे। वैदिक काल में सफल छात्रों को कोई प्रमाणपत्र नहीं दिए जाते थे, उनकी योग्यता ही उनका प्रमाणपत्र होती थी। परन्तु जो छात्र गुरूकुलों का 12 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम अथवा किसी एक वेद का अध्ययन पूरा कर लेते थे उन्हें स्नातक, जो 24 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं दो वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें वसु, जो 36 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं

तीन वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें रूद्र और जो 48 वर्षीय पाठ्यक्रम (चारों वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें आदित्य कहा जाता था।

समावर्तन समारोह (Convocation Programme)

वैदिक काल में शिष्यों की गुरूकुलीय शिक्षा पूरी होने पर समावर्तन समारोह होता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है- घर लौटना। समावर्तन समारोह में सर्वप्रथम छात्रों को ब्रह्मचारी वस्त्र उतार कर गृहस्थ वस्त्र पहनाए जाते थे। इसके बाद गुरू उन्हें यज्ञ वेदी के सामने बैठाते थे। वेद मन्त्रों से देवताओं की आराधना होती थी। इसके बाद गुरू शिष्यों को उपदेश (दीक्षान्त भाषण) देते थे। वे उन्हें गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्य पालन, समान सेवा और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते थे और अध्ययन में कभी प्रमाद (आलस्य) न करने का उपदेश देते थे। वे उन्हें पितृऋण, गुरुऋण और देवऋण से उऋण होने का उपदेश देते थे। तैत्तिरीय उपनिषद में इस प्रकार के दीक्षान्त भाषण का उल्लेख है। आज के अधिकतर भारतीय विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोहों में तैत्तिरीय उपनिषदीय दीक्षान्त उपदेश दिए जाते हैं। उस काल में दीक्षान्त उपदेश देने के बाद गुरू शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश की आज्ञा प्रदान करते थे और उन्हें आशीर्वाद देकर गुरूकुल से घर के लिए विदा करते थे।

स्त्री शिक्षा (Women Education)

प्रारम्भिक वैदिक काल में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त था परन्तु उत्तर वैदिक काल में उन्हें वर्णानुसार शिक्षा दी जाने लगी थी। शूद्र वर्ण की स्त्रियों को तो ब्राह्मणीय व्यवस्था ने उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। अल्तेकर ने एक तथ्य यह उजागर किया है कि वैदिक काल के अन्तिम चरण (ब्राह्मण काल) में बालिकाओं के विवाह की आयु 12 वर्ष निश्चित कर दी गई थी और साथ ही उनके लिए वेदों का अध्ययन निषेध कर दिया गया था। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि उस काल में स्त्रियों के लिए अलग से कोई गुरूकुल नहीं थे। परिणामतः सामान्य परिवारों की बच्चियां उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थीं केवल गुरूओं की पुत्रियां, राजघरानों और राज्यों में उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों की पुत्रियां और अति धनी एवं अति विशिष्ट व्यक्तियों की पुत्रियां ही इन गुरूकुलों में प्रवेश ले पाती थीं। यूँ तो उस काल में विश्वावारा अपाला, शाश्वती और घोषा आदि अनेक विदुषी महिलाओं का भी उल्लेख मिलता है परन्तु वास्तविकता यह है कि उस पूरे काल में स्त्री शिक्षा बहुत सीमित थी और यदि यह कहें कि उस काल में स्त्री शिक्षा उपेक्षित रही तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

वैदिक कालीन मुख्य शिक्षा केन्द्र (Main Center of Vedic Education)

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों और उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों में होती थी। ये गुरूकुल प्रारम्भिक वैदिक काल में तो प्रायः जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित होते थे परन्तु उत्तर वैदिक काल में बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ स्थानों पर स्थापित होने लगे थे। उस काल में तीर्थ स्थान धर्म प्रचार के केन्द्र होने के साथ-साथ उच्च शिक्षा के केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। बड़े-बड़े नगरों तक्षशिला, पाटलिपुत्र, मिथिला, धार, कन्नौज, नासिक, कर्नाटक और काँची उस समय के मुख्य शिक्षा केन्द्र थे।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण (Merits of Vedic Education)-

वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली के निम्नलिखित गुण थे-

1. निःशुल्क शिक्षा- वैदिक काल में गुरुकुलों में शिष्यों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उस समय शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था भी निःशुल्क होती थी। इस व्यय की पूर्ति राजा एवं धनी लोगों से प्राप्त दान, भिक्षाटन और गुरूदक्षिणा द्वारा होती थी।

2. शिक्षा का व्यापक अर्थ- वैदिक काल में छात्रों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे गुरूकुल शिक्षा पूरी करने के बाद भी स्वाध्याय में कभी आलस्य न करें। उस काल में लोग जीवन में अन्य कार्यों के सम्पादन के साथ-साथ निरन्तर ज्ञानार्जन करते थे। गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद तो लोग अध्ययन और चिन्तन ही किया करते थे और समाज को अपने अध्ययन एवं अनुभवों से लाभ पहुँचाया करते थे।

3. शिक्षा के व्यापक उद्देश्य- वैदिक काल में शिक्षा के उद्देश्य अति व्यापक थे। उस काल में शिक्षा द्वारा मनुष्यों का शारीरिक एवं मानसिक विकास किया जाता था। उन्हें सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्यों का बोध कराया जाता था, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास किया जाता था, उन्हें कर्म (व्यवसाय) की शिक्षा दी जाती थी और इस सबके साथ-साथ उनका आध्यात्मिक विकास किया जाता था। यह बात अवश्य है कि उस समय सर्वाधिक बल ज्ञान के विकास, चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक विकास पर दिया जाता था।

4. शिक्षा की व्यापक पाठ्यचर्या- वैदिक काल में मनुष्य के शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया जाता था और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में अपरा (भौतिक) एवं परा (आध्यात्मिक) दोनों प्रकार के विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाता था। उस समय सर्वाधिक बल भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन और नीतिशास्त्र की शिक्षा पर दिया जाता था और ये उस समय गुरूकुलीय शिक्षा के अनिवार्य विषय थे।

5. विशिष्टीकरण- हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्टीकरण का शुभारम्भ वैदिक काल में ही हो गया था। प्रारम्भिक वैदिक काल में तो यह विशिष्टीकरण छात्रों की योग्यता के आधार पर होता था परन्तु उत्तर वैदिक काल में यह छात्रों के वर्ण के आधार पर होने लगा था।

6. उत्तम शिक्षण विधियों का विकास- वैदिक काल में गुरुओं ने शिक्षण की अनेक उत्तम विधियों अनुकरण, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, विचार-विमर्श, श्रवण मनन-निदिध्यासन, तर्क, प्रयोग एवं अभ्यास, नाटक और कहानी का विकास किया था। उस काल में शिक्षण को रोचक और प्रभावी बनाने पर विशेष बल दिया जाता था। वर्तमान युग में मनोविज्ञान के ज्ञान और विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से अनेक अन्य उत्तम शिक्षण विधियों का विकास हुआ है परन्तु वैदिक कालीन उपरोक्त विधियों का महत्त्व आज भी है और सदैव रहेगा।

7. गुरू एवं शिष्यों का अनुशासित जीवन- वैदिक काल में गुरूकुलों के नियम बड़े कठोर होते थे और गुरू एवं शिष्य, दोनों ही इनका पालन करते थे। उस काल में गुरू बहुत अनुशासित जीवन जीते थे, उनकी कथनी और करनी समान होती थी। गुरूओं के आदर्श आहार-विहार और आचार-विचार का शिष्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता था और वे भी उचित आहार-विहार और उचित आचार-विचार का पालन करते थे। गुरू और शिष्य दोनों सादा और अनुशासित जीवन जीते थे।

8. गुरू शिष्यों के बीच मधुर सम्बन्ध- वैदिक काल में गुरू शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। ऊपर से प्रेम बरसता था और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी। गुरू शिष्यों की पूरी देखभाल करते थे और उनके सर्वांगीण विकास के लिए कठोर परिश्रम करते थे और शिष्य गुरूओं का आदर करते थे, उनके आदेशों का पालन करते थे और उनकी सेवा करते थे।

9. गुरुकुलों का उत्तम पर्यावरण और संस्कारप्रधान जीवन पद्धति- वैदिक काल में गुरूकुल प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होते थे। यहाँ शुद्ध वायु और शुद्ध जल प्राप्त होता था और वातावरण एकदम शान्त होता था। इन गुरुकुलों की दूसरी विशेषता थी- संस्कार प्रधान जीवन पद्धति। इनमें प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता

था। इस संस्कार से बच्चों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता था, वे ब्रह्मचर्य जीवन को सहज में स्वीकार करते थे और संयमित जीवन जीते थे। नियतिम रूप से धार्मिक कृत्यों (यज्ञादि) के सम्पादन से उनमें उच्च संस्कारों का निर्माण होता था। शिक्षा पूरी होने पर समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरू शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा देते थे और उन्हें कर्तव्य पालन का उपदेश देते थे।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के दोष (Demerits of Vedic Education)-

वैदिक कालीन शिक्षा के दोषों को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-

1. शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व नहीं- वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था, यह व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी, उस पर गुरूओं का पूर्ण अधिकार था। परिणामतः शिक्षा का कोई सर्वमान्य स्वरूप विकसित नहीं हो सका, जन शिक्षा का संप्रत्यय विकसित नहीं हो सका और स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी। आज की परिस्थितियों में किसी भी देश में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है, हमारे देश भारत में भी।

2. आय के अनिश्चित स्रोत एवं भिक्षाटन- वैदिक काल में गुरुकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित आर्थिक अनुदान नहीं मिलता था। ये राजा, महाराजा और धनी लोगों की कृपा पर निर्भर करते थे। यही कारण है कि उस काल में कुछ गुरूकुलों की स्थिति अति दयनीय थी। उस काल में सभी गुरुकुलों के छात्र समाज में भिक्षा माँगने जाते थे, यह उस समय के गुरूकुलों की आय का एक मुख्य स्रोत था। कुछ विद्वानों का मत है कि भिक्षाटन से दो लाभ होते थे- एक तो गुरुकुलों की व्यवस्था चलती थी और दूसरे छात्रों में विनम्रता आती थी।

3. शिक्षा की अमनोवैज्ञानिक संरचना- वैदिक काल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित थी प्राथमिक एवं उच्च। उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या बाल एवं किशोरों के मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं थी। आज की परिस्थितियों के लिए तो वह एकदम अनुपयुक्त है। आज तो मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उजागर किया है कि शिशु, बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान में बहुत अन्तर होता है। अतः शिक्षा को शिशु, बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान के आधार पर शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा आदि स्तरों में विभाजित करना चाहिए और उच्च शिक्षा को भी विभिन्न वर्गों- कला, वाणिज्य, कृषि, विज्ञान, तकनीकी आदि में विभाजित करना चाहिए।

4. अव्यवस्थित पाठ्यचर्या- वैदिक काल में सभी गुरूकुलों की पाठ्यचर्या एक समान नहीं थी, भिन्न-भिन्न गुरूकुलों की पाठ्यचर्या भिन्न-भिन्न थी। उस समय यह धारणा थी कि शिष्यों को जितना अधिक ज्ञान करा दिया जाएगा वे जीवन में उतने ही अधिक सफल होंगे। पर इस ज्ञान के स्वरूप के विषय में गुरू एकमत नहीं थे। जबकि किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या पूर्व निश्चित होनी आवश्यक है।

5. रटने पर अधिक बल- वैदिक काल में मुद्रण कला का विकास नहीं हुआ था। अतः समस्त ज्ञान स्मरण द्वारा सुरक्षित रखा जाता था। गुरूकुलों में भी शिष्यों को समस्त ज्ञान कण्ठस्थ करना पड़ता था। उस काल में उसी व्यक्ति को योग्य माना जाता था जिसे धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र और अन्य अनुशासनों एवं क्रियाओं सम्बन्धी श्लोक कण्ठस्थ होते थे।

6. कठोर अनुशासन- प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, तीनों प्रकार के संयम से लिया जाता था। इसकी प्राप्ति के लिए गुरू और शिष्य दोनों बहुत संयम का पालन करते थे, अपने आहार-विहार और आचार-विचार पर नियन्त्रण रखते थे और धर्म और नीति के अनुसार आचरण करते थे। उत्तर

वैदिक काल में गुरू के आदेशों और गुरुकुलों के नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा। तब शिष्यों को गुरू के आदेशों और गुरुकुलों के नियमों का कठोरता से पालन करना होता था।

7. जन शिक्षा का अभाव- वैदिक काल में जन शिक्षा का सम्प्रत्यय ही विकसित नहीं हुआ था। उत्तर वैदिक काल में वर्णानुसार कर्म की शिक्षा देना और शूद्रों को उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित कर देना तो जन शिक्षा का विरोधी कदम था।

8. स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था का अभाव- यूँ तो वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नही था लेकिन उस काल में अनक स्त्रियों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विशेष ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति भी की थी परन्तु इनकी संख्या नगण्य थी। उस काल में स्त्रियों के लिए अलग से गुरूकुल नहीं थे और जिन गुरुकुलों में कन्या प्रवेश ले सकती थी उनमें भी केवल गुरूओं, राजा महाराजाओं और धनी वर्ग की बच्चियाँ ही प्रवेश ले पाती थीं। साफ जाहिर है कि उस काल में स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी।

9. धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर अधिक बल- वैदिक काल में शिक्षा धर्म प्रधान थी। उस काल में भाषा, साहित्य, धर्म और नीतिशास्त्र पाठ्यचर्या के अनिवार्य विषय थे और इनकी शिक्षा पर सबसे अधिक बल दिया जाता था। छात्रों की आधे से अधिक शक्ति धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में व्यय होती थी। यही कारण है कि ज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम पदार्पण करने के बाद भी हमारा देश भौतिक दौड़ में बहुत पीछे रह गया। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों के विकास पर समान बल दिया जाए।

सारांश (Summary)

वैदिक शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। सच बात तो यह है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान- विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली और वैदिक शिक्षा प्रणाली में जो अन्तर है वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक है।

कुछ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली उस समय की संसार की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली परन्तु आज के भारतीय समाज के स्वरूप और उसकी भावी आवश्यकताओं की दृष्टि से उसके कुछ तत्व ग्रहणीय हैं और त्याज्य। उसके ग्रहणीय तत्त्वों को ही हम उसके गुण मानते हैं और त्याज्य तत्त्वों को दोष। उसके ग्रहणीय तत्त्वों में मुख्य हैं- निःशुल्क शिक्षा, व्यापक उद्देश्य, व्यापक पाठ्यचर्या, गुरू-शिष्यों का अनुशासित जीवन, गुरू-शिष्यों के बीच मधुर सम्बन्ध और शिक्षण संस्थाओं की संस्कार प्रधान पद्धति। हमें वैदिक कालीन शिक्षा के ग्रहणीय तत्त्वों को ग्रहण कर अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को प्रभावी बनाने का प्रत्यन करना चाहिए।